मतिज्ञान, श्रुतज्ञान

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारतीय संस्कृति ज्ञान की उपासक रही है। द्रष्टा पुरुषों ने ज्ञान प्राप्ति के लिए अपने आपको सर्वात्मना समर्पित कर दिया। सम्पूर्ण साहित्य चाहे वह आगम युग में रचित हो या फिर दर्शन युग में, दर्शन युग के प्रत्येक शाखा पर ज्ञानमीमांसा का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ज्ञान प्रकाश करता है। ज्ञान के बिना चारित्रिक गुणों का विकास नहीं होता। जैन दर्शन में ज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों प्रकार के विषयों का अवबोध ज्ञान के माध्यम से होता है। ज्ञान दृष्टि उद्घाटित हो जाने के पश्चात एक दिव्य शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। ज्ञान एक ऐसा प्रकाश है जो अज्ञान के अन्धकार को नष्ट करके मन के समक्ष सभी पदार्थों को अभिव्यक्त कर देता है।

आत्मा ज्ञान नहीं, बल्कि ज्ञाता है। जिससे जाना जाता है वह ज्ञान है। ज्ञान का अर्थ है जानना। जानना आत्मा का गुण है। जीव और अजीव का विभाजक तत्त्व है ज्ञान। जो आत्मा है, वह जानता है। जो जानता है, वही आत्मा है। इसका अर्थ हुआ कि ज्ञान आत्मा का व्यवच्छेदक धर्म है, आत्मा और अनात्मा की भेदरेखा है। ज्ञान का तात्पर्य है, वस्तु के स्वरूप का अवधारण करना, अर्थात् जिसके माध्यम से ज्ञाता को यह ज्ञात हो जाए की उसके विषय का स्वरूप 'यह है' वह परिणति ज्ञान हैं।

ज्ञान के पांच भेद उपलब्ध होते हैं। वे पांच ज्ञान इस प्रकार से हैं–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का सम्बन्ध सीधे आत्मा से नहीं होने के कारण उसे परोक्ष कहा जाता है, इसमें इन्द्रिय और मन के माध्यम से ज्ञान होता है। जो आत्मा है, वह जानता है जो जानता है वह आत्मा है। आत्मा कभी अनात्मा नहीं बनता और अनात्मा कभी आत्मा नहीं बनता। आत्मा से सीधे होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष एवं इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान परोक्ष कहलाता है।

मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय, केवल ये सम्यग्ज्ञान पांच ही है; इससे न ज्यादा हो सकते हैं, और न इससे कम हो सकते हैं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान को परोक्ष तथा अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान को प्रत्यक्ष बतलाया है। जो ज्ञान साक्षात् आत्मा के द्वारा नहीं होता है, वह पर होता है अर्थात् इन्द्रिय तथा मन के निमित से होता है, वह परोक्ष ज्ञान है। इन्द्रिय और मन के माध्यम से होने वाला ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है। मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है। इन्द्रिय और मन के द्वारा यथायोग्य पदार्थ जिसके द्वारा मनन किये जाते हैं, जो मनन करता है या मननमात्र मति कहलाता है। मत्यावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर इन्द्रिय और मन की सहायता से अर्थों का मनन मति है। मन और इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न हुए अभिमुख और नियमित पदार्थ के ज्ञान को आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं। स्थूल, वर्तमान और योग्यदेश में स्थित अर्थ को अभिमुख कहते हैं। इस इन्द्रिय का यही विषय है इस अवधारणा को नियमित कहते हैं। उस अर्थ के बोधन अर्थात् ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं। मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से तथा वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से और बहिरंग पांच इन्द्रिय तथा मन के अवलम्बन से मूर्त और अमूर्त वस्तु को एक दो से विकल्पाकार परोक्षरूप से अथवा सांव्यवाहारिक प्रत्यक्ष रूप से जानता है वह क्षायोपशमिक मतिज्ञान है।

श्रुत के मूल में दो भेद है द्रव्यश्रुत और भावश्रुत। आप्त की वाणी जो बारह अंग के रूप में उपलब्ध है वह द्रव्य श्रुत है और उससे होने वाले ज्ञान को भावश्रुत कहते हैं। श्रुतज्ञान के अक्षर, अनक्षर, संज्ञी, अंसज्ञी, आदि चौदह प्रकार किये गये हैं। अक्षर का तात्पर्य है जिसका कभी क्षरण अर्थात् नाश न होता हो वह अक्षरश्रुत है। जो ज्ञान आत्मा का स्वरूप होने के कारण कभी नष्ट न हो। अक्षरश्रुत में संज्ञा का अर्थ है संकेत। ठकार वृत्त की आकृति। वकार चूल्हे की आकृति ये सब आकार बाह्मी लिपि के आधार पर हैं। आकार आदि का उच्चारण व्यंजनाक्षर है। जब शब्दों के माध्यम से किसी प्रकार के आकार आदि का उच्चारण किया जाता है तब अर्थ का अवबोध होता है अतः इसका नाम व्यंजनाक्षर है।

इन्द्रिय और मन इस उभयात्मक विज्ञान से अक्षर का लाभ होता है उसकी संज्ञा लब्धि अक्षर है। श्रुत शब्द में श्रवण और श्रोतेन्द्रिय की मुख्यता है। श्वास लेना, छोडना, थूकना, छीकना

आदि ध्वनियुक्त क्रियायें करना अनक्षर श्रुत कहा जाता है। जहां जीव बोलने का प्रयत्न तो करे परन्तु भाषा वर्ण रहित हो वह नोअक्षर कहलाता है। जहां भाषा प्रयत्न न हो वह ध्वनि अभाषात्मक होती है। संज्ञा का अर्थ होता है मनोविज्ञान। संज्ञी जीवों का श्रुतज्ञान संज्ञीश्रुतज्ञान कहलाता है। जिन शास्त्रों में पाठ एक जैसे होते हैं, वे गमिक श्रुत कहलाते हैं। इसमें आदि, मध्य या अन्त में कुछ परिवर्तन के साथ बहुत सारा पाठ एक जैसा होता है। कुछ वर्णन कर देने के बाद कह दिया जाता है कि सारा पाठ उसी तरह समझलेना चाहिए। ज्ञान अपनी उत्पत्ति में लिंगज्ञान, व्याप्तिस्मरण आदि की अपेक्षा रखता है, उसी तरह प्रत्यक्ष अपनी उत्पत्ति में किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं रखता। यही अनुमानादि से प्रत्यक्ष में व्यतिरेक अधिकता है।